इकाई 39 "कुरुक्षेत्र" का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 परिवेश
39.3 केंद्रीय समस्या
  39.3.1 केंद्रीय समस्या का परिचय एवं महत्व निर्धारण
  39.3.2 रचनाकार का दृष्टिकोण
  39.3.3 केंद्रीय समस्या के प्रतिपादन में पात्रों की भूमिका
  39.3.4 मूल्यांकन
39.4 अन्य समस्याएँ
  39.4.1 विज्ञान का विनाशकारी प्रभाव
  39.4.2 परमधर्म और आपद्धर्म का निर्धारण
  39.4.3 बुद्धि और हृदय का संतुलन
  39.4.4 मूल्यांकन
39.5 संदेश
  39.5.1 संदेश का स्वरूप
  39.5.2 संदेश की प्रासंगिकता
  39.5.3 मूल्यांकन
39.6 सारांश
39.7 शब्दावली
39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपने कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प पक्ष का अध्ययन किया था। आशा है आप इस अध्ययन के द्वारा इस रचना को भली प्रकार समझ गये होंगे। यह इकाई कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य से संबंधित है। इसमें आप आधुनिक काव्य-धारा के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर की विशिष्ट काव्य-कृति कुरुक्षेत्र में उठायी गयी विशिष्ट समस्याओं का परिचय प्राप्त करते हुए उसके संदेश से परिचित हो सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कुरुक्षेत्र के रचनाकाल की परिस्थितियों एवं प्रेरणा-भूमि को समझ सकेंगे,
- कृति की केन्द्रीय समस्या जो प्रतिपाद्य के मूल में विद्यमान है—का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- केन्द्रीय समस्या से संबंध अनय विशिष्ट समस्याओं का निर्धारण कर सकेंगे,
- कृति के संदेश के स्वरूप और उसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

39.1 प्रस्तावना

कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प का अध्ययन करने के उपरांत अब आप यह जानना चाहेंगे कि इस कृति में कवि का रचनागत उद्देश्य क्या रहा है। क्योंकि किसी भी रचना का उद्देश्य उसकी समकालीन परिस्थितियों एवं रचनाकार की प्रेरणा-भूमि से आकार ग्रहण करता है। अतः आपकी यह भी जिज्ञासा होगी की कुरुक्षेत्र किन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं से प्रेरित होकर लिखा गया है। इस रचना की केन्द्रीय एवं अन्य विशिष्ट समस्याओं को समझ लेना आपके लिए इस कारण आवश्यक है क्योंकि इन्हीं से प्रतिपाद्य का स्वरूप निर्धारित होता है। रचनाकार ने 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से जो संदेश अपने पाठकों को देना चाहा है उसको

जानने की उत्सुकता भी आपमें स्वाभाविक है क्योंकि किसी भी रचना का प्रतिपाद्य प्रमुखत: उसके संदेश में ही अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार इन सभी पक्षों के अध्ययन-विश्लेषण के उपरांत ही हम 'कुरुक्षेत्र' के प्रतिपाद्य को भली प्रकार समझ पाएँगे।

सबसे पहले आप यह जान लें कि प्रतिपाद्य किसे कहते हैं? प्रतिपाद्य का अर्थ है—कवि ने अपनी काव्य-कृति में किस उद्देश्य एवं संदेश को व्यक्त किया है। कृति में क्या कहा गया है, क्यों कहा गया है, इसी का अध्ययन हम प्रतिपाद्य के अंतर्गत करते हैं। प्रतिपाद्य को सही रूप में समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम रचना को सही रूप में समझें। उसमें निहित संदेश को भली प्रकार पहचानें। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं बातों का ध्यान रखकर कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य पर विचार करेंगे।

39.2 परिवेश

परिवेश का अर्थ है—वातावरण। जब हम किसी कृति के प्रतिपाद्य पर विचार करते हैं तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस वातावरण अथवा परिस्थितियों का अध्ययन करें जिनसे प्रभावित होकर रचनाकार ने कृति का सृजन किया। इसके साथ ही उन प्रेरणाओं का अध्ययन भी आवश्यक है जिन्होंने कृति के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। क्योंकि परिवेश और प्रेरणाओं के माध्यम से ही रचनाकार अपने प्रतिपाद्य के स्वरूप और दिशा का निर्धारण करता है।

'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। सन् 1941 से 'कुरुक्षेत्र' का लिखा जाना आरंभ हो गया था। कुरुक्षेत्र के परिवेश को समझने के लिए हमें यह समझना होगा कि यह वह समय है जब द्वितीय महायुद्ध की छाया संपूर्ण विश्व पर मँडरा रही थी। सन् 1939 ई. में यह महायुद्ध आरंभ हो चुका था। भयावह नरसंहार की इस आँधी ने साहित्यकारों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित किया। दिनकर भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। उन्होंने "रश्मि लोक" की भूमिका में लिखा—"कुरुक्षेत्र काव्य का आरंभ सन् 1941 में सीतामढ़ी में हुआ था, जहाँ मैं सब रजिस्ट्रार था और पूर्ण वह सन् 1946 ई. में पटने में हुआ, जहाँ मैं युद्ध-प्रचार विभाग में काम कर रहा था।" कुरुक्षेत्र की रचना के समय दिनकर का युद्ध प्रचारक विभाग में काम करना उन्हें युद्ध की समस्या से सीधे-सीधे जोड़ता है। एक ओर अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय वातावरण में युद्ध के प्रभाव की छायाएँ एवं दूसरी ओर दिनकर का स्वयं युद्धप्रचार विभाग में कार्यरत रहना निश्चय ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को आकार देने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। निश्चय ही परिवेश के इन दबावों ने दिनकर के समक्ष युद्ध की समस्या को तीव्रता से उभारा होगा। युद्ध क्यों होते हैं? क्या युद्ध के बिना भी विश्व की कल्पना की जा सकती है? मानव जाति के लिए विनाशकारी इन युद्धों के लिए कौन उत्तरदायी हैं? ऐसे प्रश्नों का मंथन ही कुरुक्षेत्र की रचना का आधार बना और इसमें कोई संदेह नहीं कि दिनकर के सम्मुख इन प्रश्नों की चुनौती का एक महत्वपूर्ण तात्कालिक कारण द्वितीय महायुद्ध की घटनाओं का विद्यमान रहना बना।

'कुरुक्षेत्र' के रचना-काल में हमारे देश का राजनीतिक परिवेश विशिष्ट रूप से घटनात्मक और हलचल भरा है। 'रश्मिलोक'-में दिनकर लिखते हैं—"सन् 1941 में स्थिति यह थी कि गांधी जी आंदोलन छेड़ने में हिचकिचा रहे थे और युवक समझते थे कि आंदोलन छेड़ा भी गया, तो वह कुचल दिया जाएगा। इस स्थिति में मुझे वही चिंतन शुद्ध दिखायी दिया जो कुरुक्षेत्र में है। अहिंसा अगर परमधर्म है, तो हिंसा को आपद्धर्म मानना ही होगा।" वस्तुत: गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए भी दिनकर पूरी तरह से कभी यह स्वीकार नहीं कर सके कि मात्र अहिंसा से ही पशु-बल का प्रतिकार संभव है। जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड, रौलेट एक्ट आदि के द्वारा अंग्रेजों का अहिंसक आंदोलन का दबाया जाना दिनकर के सामने पूरी तरह प्रत्यक्ष था। एक ओर गांधी जी के विराट् चुम्बकीय व्यक्तित्व के प्रति अगाध श्रद्धा तथा दूसरी ओर उग्रवादी तथा क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर उनका रुझान—इन दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों ने दिनकर के मन में आत्मबल और देहबल की सार्थकता को लेकर द्वन्द्व और दुविधा की स्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं। इस द्वन्द्व और दुविधा को प्रखर बनाने में उन मित्रों का भी योगदान रहा जो गांधी जी की अहिंसा को धर्म नहीं नीति मानते थे। इसका प्रभाव निश्चय ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य पर व्यापक रूप में पड़ा।

'कुरुक्षेत्र' की रचना से ठीक पहले दिनकर ने ''कलिंग-विजय'' नामक एक कविता की रचना की थी। इस कविता में कवि ने कलिंग युद्ध के बाद अशोक के पश्चाताप के माध्यम से अहिंसा के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया है। दिनकर के शब्दों में—''कलिंग-विजय'' कविता के बाद कवि का संपर्क रोजालक्जम बर्ग नामक प्रेतात्मा से हुआ जिन्होंने अहिंसा की कविता को सुनाने पर कवि को प्रताड़ित किया। इससे कवि का अहिंसा विषयक संदेह पुष्ट हुआ और उक्त प्रेतात्मा का उपदेश सुनकर उसने सीतामढ़ी लौटने पर पाँच कवित्त लिखे जिनके इर्दगिर्द कुरुक्षेत्र काव्य की रचना हुई।'' यद्यपि प्रेतात्मा का यह प्रसंग तर्क की कसौटी पर विवादास्पद हो सकता है किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि दिनकर मानसिक रूप से अहिंसा के प्रति अपनी एकनिष्ठता के प्रति शंकालु होने लगे थे जिसकी परिणति कुरुक्षेत्र में भीष्म के माध्यम से की गयी है।

आपने कुरुक्षेत्र का अध्ययन करते हुए स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया होगा कि इस कृति में द्वन्द्व की विशेष स्थिति है। एक ओर युद्ध और शांति का द्वन्द्व जहाँ कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को गंभीर बनाता *it*, वहाँ हिंसा-अहिंसा, आत्म बल-पशुबल, बुद्धि-हृदय, विज्ञान-कला आदि के द्वन्द्वों की स्थितियाँ इस काव्य को महत्व देती हैं। इस द्वन्द्वात्मकता के मूल में सच पूछिए तो वे परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिन्होंने दिनकर के हृदय में अनेक द्वन्द्व और प्रश्न जगा दिए थे। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का यह मत पूरी तरह उचित है कि ''वस्तुतः उस समय दिनकर के सारे मनोविज्ञान में ही एक ऐसी अस्तव्यस्तता थी, जिसकी छाप कुरुक्षेत्र पर स्पष्ट रूप से पड़ी।''

बोध प्रश्न 1

क) द्वितीय महायुद्ध ने कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को किस रूप में प्रभावित किया। चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

ख) सही उत्तर पर (✓) निशान लगाएँ:

दिनकर अहिंसा को कुरुक्षेत्र के रचना-काल में पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। क्योंकि:

i) उन्होंने ''कलिंग-विजय'' कविता में हिंसा को अपना समर्थन दिया था। ( )

ii) उन पर द्वितीय महायुद्ध का व्यापक प्रभाव पड़ा था। ( )

iii) वे उग्रवादी एवं क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े अपने मित्रों की संगति से प्रेरणा पा रहे थे। ( )

39.3 केंद्रीय समस्या

39.3.1 केंद्रीय समस्या का परिचय एवं महत्व-निर्धारण

कुरुक्षेत्र की केंद्रीय समस्या युद्ध है। दिनकर ने युद्ध की समस्या को अपनी इस कृति का आधार बनाया है। आप परिवेश का अध्ययन करते हुए यह देख चुके हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं के दबाव में दिनकर का मन युद्ध की समस्या को लेकर आंदोलित रहा। कवि मानता है कि पूर्ति के लिए अनैतिक साधनों के उपयोग में संकोच नहीं करेंगे, तब तक युद्ध की आशंकाओं से इंकार नहीं किया जा सकता। जब तक मनुष्य-मनुष्य के बीच विषमता अथवा असमानता विद्यमान है, युद्ध को टालना संभव नहीं है। सप्तम सर्ग में भीष्म स्पष्ट रूप से मानते हैं—

''जब तक मनुज मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,

शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।''

दिनकर मानते हैं कि युद्ध न पाप है और न पुण्य। युद्ध को नैतिक या अनैतिक की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। क्योंकि हमें युद्ध की नैतिकता या अनैतिकता का निर्धारण करने से पहले यह देखना होगा कि युद्ध का उद्देश्य क्या है? युद्ध का आयोजन करने वाली शक्तियाँ कर्त्तव्य भाव से प्रेरित होकर युद्ध में भाग ले रही हैं या कोई निजी स्वार्थ उन्हें युद्ध के लिए प्रवृत्त कर रहा है? निस्वार्थ भाव से कर्तव्य पालन के लिए छेड़ा गया युद्ध निश्चय ही पुण्य है।

इस प्रकार दिनकर ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की जिस समस्या को उठाया है वह मानवता के इतिहास से आरंभ से अब तक संबद्ध रही है। इस समस्या को कवि ने महाभारत के उपरांत की स्थितियों से ग्रहण किया है। युद्ध के बाद नरसंहार के पश्चाताप से व्यथित युधिष्ठिर जहाँ शांति के पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं वहाँ भीष्म युद्ध के कारणों और स्थितियों पर विशद विचार करते हुए युद्ध की अनिवार्यता के पक्ष में अपना मत देते हैं। इन दोनों पक्षों के माध्यम से दिनकर ने युद्ध की समस्या को कुरुक्षेत्र के केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया है। आज मानव जाति के सम्मुख दो ही विकल्प हैं–उसे अपने अस्तित्व को बनाए रखना है या नष्ट हो जाना है। इस स्थिति के लिए युद्ध की आशंकाएँ प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। दिनकर ने 1946 में कुरुक्षेत्र के माध्यम से युद्ध की जिस समस्या को प्रस्तुत किया है उसका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। आज हमें जिस युद्ध की आशंका है, अगर वह अपनी अंतिम परिणति में पहुँच गया तो मानवजाति के संपूर्ण विनाश से हम बच नहीं सकते। भीष्म के माध्यम से द्वितीय सर्ग में दिनकर युद्ध की भयावहता का अंकन इस रूप में करते हैं–

''युद्ध का उन्माद संक्रमण शील है,
एक चिनगारी कहीं जागी अगर,
तुरत बह उठते पवन उनचास है,
दौड़ती, हँसती, उबलती आग चारों ओर से।''

युद्ध की ये स्थितियाँ भविष्य में मनुष्य को न झेलनी पड़े यही दिनकर की मूलभूत चिन्ता है। इस चिन्ता को दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

39.3.2 रचनाकार का दृष्टिकोण

पिछले अध्ययन से आप यह जान गये हैं कि कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या को आधार बनाया गया है किन्तु हमें यह भी जान लेना आवश्यक है कि युद्ध की इस समस्या के प्रति स्वयं रचनाकार क्या सोचता है? आइये, हम रचनाकार के दृष्टिकोण को समझें तथा कुछ ऐसे विचार-बिन्दु निर्धारित करें जो 'कुरुक्षेत्र' की इस केन्द्रीय समस्या के मूल्यांकन में सहायक हो सकें। कुरुक्षेत्र के आरंभ में ''निवेदन'' शीर्षक के अंतर्गत व्यक्त निम्नलिखित विचारों को ध्यान से देखें:

क) ''युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु, उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनीतियों का जाल बिछा कर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर, जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर हैं?''

ख) ''कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था।''

ग) ''कलिंग विजय' नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो, युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो।''

घ) ''कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः, एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है, जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है।''

उपर्युक्त उद्धरणों से (रचनाकार के दृष्टिकोण) हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं–

i) दिनकर ने महाभारत के प्रसंग विशेष को इसलिए नहीं चुना कि वे महाभारत के उस प्रसंग को पुनः प्रस्तुत करना चाहते थे बल्कि इसलिए क्योंकि वे इस बहाने अपने युग को युद्ध की चिरन्तन समस्या के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना चाहते थे। दूसरे शब्दों में वे अतीत के माध्यम से वर्तमान को रेखांकित करना चाहते थे।

ii) वे युद्ध के विनाश के लिए उत्तरदायी व्यक्ति या सत्ता के निर्धारण पर विचार करना चाहते थे।

iii) दिनकर का यह मानना है कि मनुष्य की समस्याओं के मूल में युद्ध की समस्या विद्यमान है जिससे चाह कर भी पलायन नहीं किया जा सकता।

v) कुरुक्षेत्र में वैचारिकता अथवा तत्व चिन्तन खोजने वालों को निराशा होगी। एक सामान्य व्यक्ति के मन में युद्ध को लेकर जो संदेह उठते हैं वे कुरुक्षेत्र में मूलतः हृदय की भूमि पर टिके हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति वैचारिक रूप में हुई है।

आप देखेंगे कि कुरुक्षेत्र में विद्यमान केन्द्रीय समस्या के प्रति कवि का दृष्टिकोण इस समस्या के मूल में जाने का रहा है। वे इस समस्या की तह में जाकर उसके समाधान की संभावनाएँ खोजना चाहते हैं। क्योंकि युद्ध की यह समस्या दिनकर के मन में अनेक प्रश्न और द्वन्द्व उठाती है, अतः युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध के निषेध और स्वीकार के रूप में दो पक्ष स्थापित करते हैं। दिनकर आत्मबल के समक्ष बाहुबल को किसी भी रूप में दुर्बल नहीं मानते। अतः भीष्म के चिन्तन में ही दिनकर का दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

39.3.3 केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में पात्रों की भूमिका

दिनकर ने युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध की समस्या को मूर्त्त करने का प्रयास किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन दोनों पात्रों के माध्यम से इस समस्या का सुन्दर प्रतिपादन संभव हो सका है। संपूर्ण महाभारत में युधिष्ठिर का चरित्र शांत और शालीन रहा है। युद्ध के बाद उनके मन में भीषण नरसंहार को लेकर पश्चाताप का उदय होता है। वे भयानक रक्तपात को देख सिहर जाते हैं। उनका मन इन शब्दों में चीत्कार कर उठता है–

"जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड मैं मनोबल से लड़ता,
तप से, सहिष्णुता it, त्याग से सुयोधन को,
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप it नहीं दुर्योधन राधरता,
तो भी हाय, यह रक्त-पात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता।"

युधिष्ठिर देह-बल को त्यागकर आत्म बल से दुर्योधन का प्रतिकार करना चाहते थे। वे मानवीय गुणों से दानवी प्रवृत्तियों को जीतने के पक्षधर हैं। यदि इसमें वे असफल होते तब भी वे भाइयों के साथ भीख तक माँगने को तैयार थे। वस्तुतः युधिष्ठिर के रूप में दिनकर ने गांधीवादी दर्शन को प्रतिपादित करना चाहा है। गांधीवादी दर्शन भी आत्म बल से पशुबल का प्रतिकार करना चाहता है। वह युद्ध में हुए भीषण नर संहार और रक्तपात से प्राप्त राज्य को घृणा की दृष्टि से देखता है। युधिष्ठिर का भी यह दृढ़ अभिमत है–

"विजय कराल नागिनी-सी डँसती है मुझे,
इससे न जूझने को मेरे पास बल है,
ग्रहण करूँ मैं कैसे? बार-बार सोचता हूँ,
राज सुख लोहू भरे कीच का कमल है।"

युधिष्ठिर को अपनी विजय "कराल नागिनी-सी" डसती है क्योंकि वे इस विजय को प्राप्त करने वाले साधनों को उचित नहीं समझते। गांधी जी ने भी सदैव साधन और साध्य-दोनों के नैतिक होने की आवश्यकता पर बल दिया था। युधिष्ठिर, युद्ध की समस्या को नैतिकता और अनैतिकता के परंपरागत संदर्भों में रखकर देखते हैं। यही कारण है कि वे 'कुरुक्षेत्र' के प्रतिपाद्य के प्रतिपक्ष की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

भीष्म युद्ध की इस समस्या पर वस्तुगत रूप से चिन्तन करते हैं। वे सर्वप्रथम युद्ध के मूलभूत कारण को रेखांकित करते हैं। उनका मत है कि मनुष्य के मन में निहित दुष्प्रवृत्तियाँ जब उग्र और प्रचण्ड हो उठती हैं तब क्षोभ, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष के भाव मन को दूषित कर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि युद्ध के

पूर्व वह किन्हीं बहानों को गढ़ लेता है जो ऊपर से नैतिक दिखाई देते हैं किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि युद्ध के मूल में मनुष्य की स्वार्थ भावना से प्रेरित द्वेष-भाव अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। और जब युद्ध का आरंभ हो जाता है तब उसके संक्रामक प्रभाव से कोई बच नहीं पाता–

"युद्ध का उन्माद संक्रम शील है,
एक चिनगारी कहीं जागी अगर,
तुरत बह उठते पवन उनचास हैं,
दौड़ती, हँसती, उबलती आग चारों ओर से।"

भीष्म का मानना है कि युद्ध पूरी तरह त्याज्य नहीं है। जिस प्रकार रोग ग्रस्त हो जाने के बाद कड़वी औषधि से ही उसका उपचार होता है उसी प्रकार मनुष्य-मनुष्य के बीच स्वार्थमय द्वेष की टकराहट के रोग का उपचार युद्ध की कड़वी औषधि से ही संभव हो पाता है। इसलिए युद्ध को पाप और पुण्य में विंभाजित करके देखना उचित नहीं। जहाँ पशुबल अन्याय और अत्याचार में प्रवृत्त हो वहाँ आत्मबल में सीमित हो जाना पाप ही कहा जाएगा–

"कौन केवल आत्म बल से जूझकर
जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
आत्म बल का एक बस चलता नहीं।"

आत्म बल और शांति जब भी अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने में असमर्थ हो जाती है तभी किसी भावी युद्ध की पृष्ठभूमि निर्मित हो जाती है–

"शान्ति खोलकर खड्ग क्रांति का
जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का,
वह सर्जन करती है।"

भीष्म, शांति का तटस्थ मूल्यांकन करते हुए उसकी सीमाओं का सही रेखांकन करते हैं। शांति जब व्यक्ति या समाज के मूलभूत परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करती है तब वही बाधा किसी न किसी युद्ध की पृष्ठभूमि बन जाती है। भीष्म की ये मान्यताएँ युद्ध की स्थिति का सही और सार्थक ढंग से मूल्यांकन करने में सक्षम है। वह वर्तमान की शोचनीय अवस्था से भविष्य के प्रति निराशा की कोई भावना नहीं रखते। मानवीय क्षमताओं के प्रति उन्हें असीम विश्वास है। मनुष्य की प्रचण्ड कर्म-शक्ति उसके व्यक्तित्व में निराशा नहीं आने देती जो संसार को नश्वर समझने वाले ज्ञानियों में प्रायः पायी जाती है:

"अकर्मण्य पण्डित हो जाता,
अमर नहीं रोने से,
आयु न होती क्षीण किसी की
कर्म-भार ढोने से।
इतना भेद अवश्य युधिष्ठिर दोनों
में होता है।
हँसता एक मृत्ति पर, नभ में एक
खड़ा रोता है।

इस प्रकार युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से कवि ने 'कुरुक्षेत्र' की केन्द्रीय समस्या-युद्ध के प्रति अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर दिया है। युधिष्ठिर जहाँ गांधी के अहिंसावादी दर्शन को अपना समर्थन देते दिखायी देते हैं, वहाँ भीष्म गीता के कर्म-योग को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में निरुपित करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से दिनकर ने युद्ध की समस्या को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

39.3.4 मूल्यांकन

आपने देखा कि युधिष्ठिर और भीष्म कुरुक्षेत्र की प्रमुख समस्या-युद्ध को किस प्रकार सजीव और सक्षम रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ अब हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि दिनकर

ने युद्ध की जिस समस्या को कुरुक्षेत्र में आधार बनाया है उसे अपने पाठकों तक संप्रेषित कर पाने में वे किस हद तक सफल हो पाये हैं? इस समस्या के निरूपण में उन्होंने जिन तर्कों को अपना आधार बनाया है वे काव्यात्मक रूप से कितने प्रभावशाली सिद्ध हो पाए हैं? आपने पिछली सामग्री के अनुशीलन में यह देखा होगा कि दिनकर "कुरुक्षेत्र" को "साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय" मानते हैं जो "मस्तिष्क के स्तर पर" अभिव्यक्त हुआ है। इसका आशय यह हुआ कि इस कृति का आधार तो विचार और चिन्तन ही है किन्तु उसमें ज्ञानी के तर्क युक्त प्रतिपादन की अपेक्षा सामान्य व्यक्ति की भावनाओं और विचारों का ही प्राधान्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुरुक्षेत्र में व्यक्ति की भावनात्मक अभिव्यक्ति की प्रधानता है। यही कारण है कि इस समस्या का निरूपण करते समय कवि जिस द्वन्द्व और मंथन से गुजरा है वह पाठक को भी उसी द्वंद्व और मंथन की भूमि तक पहुँचा देता है। दिनकर युद्ध की स्थिति को मानव-नियति से जोड़ते हैं और यह मानते हैं कि जब तक मनुष्य के मन में स्वार्थ की भावना विद्यमान है तब तक युद्ध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का "आधुनिक साहित्य" में निरुपित यह कथ्य दिनकर की इस मान्यता के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है–'दिनकर जी कहते हैं कि जब तक संसार में शांति और सद्भाव नहीं है, तब तक युद्ध होंगे ही, होने ही चाहिए, पर दूसरी ओर प्रश्न यह भी है कि जब तक युद्ध होते रहेंगे तब तक शांति और सद्भाव का विकास होगा कैसे?" वस्तुतः व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ वातावरण से अछूती नहीं रह सकती। अतः जब युद्ध का परिवेश मानव की नियति है तब वह कैसे उदात्त भावों की साधना कर सकेगा? इसी प्रकार दिनकर ने कुरुक्षेत्र में अनेक बार देश-काल की सीमाओं का उल्लंघन किया है। इससे कुरुक्षेत्र में वातावरण की सहजता बनी नहीं रह पाई है। पाठक को ऐसा प्रतीत होता है मानों दिनकर स्वयं ही संपूर्ण वादविवाद के सूत्र सँभाले भीष्म और युधिष्ठिर को पीछे ढकेल कर आगे आ जाते हैं। यह स्थिति कृति की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को आघात पहुँचाती है, जिससे मूल समस्या का प्रभाव बिखर जाता है। फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं युद्ध की समस्या के प्रतिपादन में वे अपने पाठकों को आदि से अंत तक बाँधे रहने में सफल हुए हैं।

बोध प्रश्न 2

क) सही उत्तर पर लगाएँ।

दिनकर मानते हैं कि भविष्य में युद्धों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि:

i) मनुष्य स्वभावतः युद्ध-प्रिय है।

ii) मनुष्य में स्वार्थ और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

iii) मनुष्य परिस्थितियों के आगे विवश है।

ख) कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में महाभारत का आधार क्यों ग्रहण किया गया है? चार पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

ग) कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित युद्ध की समस्या के संदर्भ में आप किस पात्र से अधिक प्रभावित हैं और क्यों? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

घ) कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या के प्रतिपादन से आप कहाँ तक सहमत हैं? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

39.4 अन्य समस्याएँ

39.4.1 विज्ञान का विनाशकारी प्रभाव

कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या के अतिरिक्त ऐसी विशिष्ट समस्याओं का भी निरुपण किया गया है जिनका मानव-भविष्य के साथ गहरा संबंध है। इनमें एक समस्या है–विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव की "चक्रवाल" की भूमिका में दिनकर लिखते हैं– "जब से विज्ञान उत्पन्न हुआ, दयालु, श्रद्धालु, परोपकारी और दूसरों के निमित्त कष्ट सहने वाले व्यक्तियों की संख्या कम होती गयी है। इस वैज्ञानिक युग की विचित्रता यह है कि लंदन के घंटे की आवाज तो हमें रेडियो के द्वारा पटने में भी सुनायी पड़ती है, किन्तु पास-पडौस में कराहने वाले रोगी की आवाज हमारे कान नहीं सुन सकते।" विज्ञान की इस विडम्बना को दिनकर ने कुरुक्षेत्र में इस प्रकार निरुपित किया है-

"सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह स्मृति के पार
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान,
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।"

दिनकर विज्ञान का पूर्णतः निषेध करते हों, ऐसी बात नहीं। वे तो मानव मूल्यों से रहित विवेकहीन वैज्ञानिक विकास के विरोधी हैं। क्योंकि इसी मनुष्य के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। बुद्धि की अतिवादिता से उत्पन्न यह विज्ञान मनुष्य का लक्ष्य नहीं। कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग में उनका स्पष्ट मत है–

"रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या बुद्धि यह आग्नेय
विश्व-दाहक, मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अंध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।"

वस्तुतः विज्ञान के इस बढ़ते प्रभाव ने जिस प्रकार मानव-मूल्यों और मानव-संवेदनाओं को सोख लिया है उससे चिन्तित कवि ने कुरुक्षेत्र में इस समस्या को इसलिए निरुपित किया है क्योंकि इस वैज्ञानिक विकास ने युद्ध की आशंकाओं को और भी गहरा दिया है। अणु आयुधों का निर्माण इसी विकास की भयावह परिणति है।

39.4.2 परम धर्म और आपद्धर्म का निर्धारण

दिनकर ने अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को आपद्धर्म के रूप में निरुपित किया है। यद्यपि दोनों को सम्यक् महत्व दे पाना तथा समय की माँग के अनुसार उनका ग्रहण और विसर्जन मानवता के लिए एक समस्या है। हम अपनी संपूर्ण भारतीय परंपरा में कहीं भी हिंसा का समर्थन नहीं पाते। हमारा धर्म, दर्शन और संस्कृति अहिंसा का विशिष्ट मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार करती है। गांधी जी के नेतृत्व में चलाया गया अहिंसात्मक आंदोलन स्वयं में मानव जाति के इतिहास में एक क्रांति माना जा सकता है। इन परिस्थितियों में हिंसा की स्वीकृति को सहज ग्राह्न नहीं कहा जा सकता। किन्तु दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनेकशः हिंसा की पक्षधरता को स्वीकार किया है। उनका तर्क है कि जब तक व्यक्ति में पौरुष, बल और सामर्थ्य आदि गुण नहीं होंगे तब तक उसकी अहिंसा और क्षमा का कोई महत्व नहीं। तृतीय सर्ग में भीष्म कहते हैं–

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
"उसको क्या जो दंतहीन, विष रहित, विनीत सरल हो।"

कुरुक्षेत्र के भीष्म मानते हैं कि साधना और तपस्या सदैव पशुबल से पराजित होती आयी है–

"हिंसा का आघात तपस्या ने कब, कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।"

इस प्रकार दिनकर ने भारतीय परंपरा का आदर करते हुए यद्यपि अहिंसा को परमधर्म के रूप में स्वीकार किया है किन्तु हिंसा को आपद्धर्म मानने से भी वे नहीं कतराते। वस्तुतः भीष्म के रूप में वे परमधर्म और आपद्धर्म के निर्धारण की समस्या का समाधान पा जाते हैं।

39.4.3 बुद्धि और हृदय का संतुलन

कुरुक्षेत्र में बुद्धि और हृदय के संतुलन की समस्या को व्यापक महत्व दिया गया है। आज इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि जिस अनुपात में व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास हो रहा है उसी अनुपात में हृदय संकुचित होता जा रहा है। हृदय के संकुचित होते जाने का ही यह परिणाम है कि मानव-मन में ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, स्वार्थ आदि भावनाएँ स्थान पाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न कर रही हैं। 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में बुद्धि के इस बढ़ते हुए प्रभाव को इस प्रकार निरूपित किया गया है–

"किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार,
प्राण में करते दुःखी हो देवता चीत्कार"

यह सही है कि मस्तिष्क के निरंतर बढ़ते जाने–उसके माध्यम से नये-नये आविष्कार कर लेने को व्यक्ति त्यौहार के उल्लास से ग्रहण करता है किन्तु यह भी सच है कि अपने आकर्षण के जाल में फाँस कर यह बुद्धि उसी व्यक्ति को नयी-नयी उलझनों में उलझाकर उसके प्राण-रस को सोख लेती है। कुरुक्षेत्र के चौथे सर्ग में भीष्म कहते हैं–

"बुद्धि फेंकती तुरत जाल निज
मानव फँस जाता है
नयी-नयी उलझनें लिए
जीवन सम्मुख आता है।"

और फिर बुद्धि के अतिवादी विकास का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य के भीतर स्वाभिमान की जो आग धधकती है–निर्णय लेने की जो ललक विद्यमान रहती है–उसे वह कुण्ठित कर देती है। व्यक्ति कोई भी निर्णय करने से पहले जब बुद्धि की ऊहा-पोह से ग्रस्त हो जाता है तब न तो उसका स्वाभिमान प्रबुद्ध हो पाता है और न ही वह समयानुकूल निर्णय लेने में समर्थ होता है। भीष्म चौथे सर्ग में इस तथ्य को इन शब्दों में निरूपित करते हैं–

"सदा नहीं मानापमान की बुद्धि उचित सुधि लेती,
करती बहुत विचार, अग्नि की शिखा बुझा है देती।"

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में दिनकर ने युद्ध की समस्या को रेखांकित करने के साथ-साथ विज्ञान के बढ़ते प्रभाव, परमधर्म और आपद्धर्म के निर्धारण तथा बुद्धि और हृदय के संतुलन की समस्या को भी सम्यक महत्व दिया है केन्द्रीय के प्रतिपादन के साथ-साथ उन्होंने अन्य समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा कवि ने अपने प्रतिपाद्य को विशदता और गंभीरता प्रदान की है।

39.4.4 मूल्यांकन

कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या युद्ध के साथ-साथ दिनकर ने उन समस्याओं की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जो मानव-भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। वस्तुतः इन समस्याओं के प्रतिपादन से कुरुक्षेत्र का फलक और भी व्यापक तथा प्रभावशाली हो गया है। दिनकर ने इन सभी समस्याओं को प्रस्तुत करने में भीष्म को अपना आधार बनाया है। वह उचित भी था क्योंकि भीष्म का व्यक्तित्व जितना हमारे युग के निकट है तथा दिनकर के अपने दृष्टिकोण से मेल खाता है उतना युधिष्ठिर का नहीं। यही कारण है कि दिनकर ने

इन सभी समस्याओं के केन्द्र में भीष्म को रखा है। इन समस्याओं के प्रतिपादन में उन्होंने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि वे रचना की केन्द्रीय समस्या से बराबर जुड़ी रहें। विज्ञान का बढ़ता प्रभाव युद्ध की समस्या से इसलिए जुड़ता है क्योंकि युद्ध संबंधी वैज्ञानिक आविष्कारों ने युद्ध को मानव-भविष्य के और भी निकट ला दिया है। अहिंसा और हिंसा में अवसर आने पर सही विकल्प न चुन पाना भी युद्ध को ही आमंत्रित करता है। तथा बुद्धि के अतिवादी विस्तार ने मनुष्य को स्वार्थमय और संवेदना शून्य बना दिया है जिससे अब हिंसा और रक्तपात से उसका हृदय विचलित नहीं होता। इस प्रकार इन समस्याओं के बहाने दिनकर ने युद्ध की समस्या के रंगों को और गाढ़ा किया है।

बोध प्रश्न 3

क) सही उत्तर पर (✓) निशान लगाएँ:

दिनकर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से इसलिए आशंकित हैं क्योंकि:

i) वह मनुष्य की विलासिता के साधनों में वृद्धि कर रहा है।

ii) उसने मनुष्य को सुविधाभोगी बना दिया है।

iii) उसने मनुष्य को सहानुभूति और संवेदना से शून्य कर दिया है।

ख) निम्नलिखित अवतरण को ध्यान से पढ़िए और आगे दिये गये प्रश्नों के उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए:

"क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो
उसका क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत सरल हो?"

i) विष से युक्त सर्प को ही क्षमा क्यों शोभा देती है?

.....

ii) विषहीन सर्प के लिए क्षमा की सार्थकता क्यों नहीं है?

.....

iii) इन पंक्तियों में "गरल" शब्द किस विशेषता की ओर संकेत करता है।

.....

39.5 संदेश

39.5.1 संदेश का स्वरूप

आपने देखा कि दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का प्रतिपादन किया है किन्तु केवल समस्याओं का निरुपण ही प्रतिपाद्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि हमें यह भी देखना होता है कि कवि ने अपनी रचना के माध्यम से समाज को क्या संदेश दिया है? महान कृतियों की यह विशेषता होती हैं कि वे मानवमात्र के लिए ऐसा उदात्त संदेश प्रस्तुत करती हैं जो उन्हें न केवल प्रेरणा देता है बल्कि भविष्य का पथ भी प्रस्तुत करता है। 'कुरुक्षेत्र' भी इसका अपवाद नहीं है। आइए हम देखें कि कुरुक्षेत्र के माध्यम से दिनकर ने समाज को क्या संदेश दिया है तथा उस संदेश का स्वरूप क्या है? आप सरलता से यह समझ जाएँगे कि कवि ने जो संदेश दिया है वह कहीं न कहीं कृति में निरुपित प्रमुख समस्याओं से भी कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की समस्या पर व्यापक विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि युद्ध का मूल कारण मुनष्य के मन में विद्यमान दुष्प्रवृत्तियाँ हैं। अतः यदि हमें युद्ध के निरंतर चले आते क्रम को समाप्त करना है तो इसके लिए हमें क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करनी होगी तभी यह संभव है कि भविष्य में मानव-जाति को किसी और युद्ध को न झेलना पड़े। क्योंकि ऐसा होना निकट भविष्य में संभव नहीं है अतः हमें पाप और पुण्य के विभाजन के बिना निर्भय होकर युद्ध की नियति को स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। और तब हमें देखना होगा कि आत्मबल और देहबल दोनों के संतुलन को साधा जाए। क्योंकि केवल आत्मबल जहाँ पशु-बल का प्रतिकार नहीं कर सकता वहाँ केवल देह-बल के द्वारा मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का विकास ही संभव

है। हमें इसीलिए अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को आपद्धर्म के रूप में ग्रहण करना होगा। विज्ञान और बुद्धि के अतिवादी विकास से भी युद्ध की स्थितियाँ जन्म लेती हैं अतः हमें जहाँ विज्ञान कोमल-मूल्यों के साथ जोड़कर उसके अंधे विकास को अनुशासित करना होगा वहाँ बुद्धि को अपनी विकास यात्रा में हृदय को भी साथ लेकर चलना होगा। वर्तमान परिस्थितियों में हमें मानव-भविष्य के लिए जो कुछ भी निराशाजनक दिखायी देता है उससे मानवीय क्षमताओं पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। उसमें संघर्ष की जो अग्नि है वह निश्चय ही उसके भविष्य को उज्जवल और उज्जवल बनाएगी। भीष्म के माध्यम से मनुष्य की संघर्षशील प्रवृत्ति पर कवि ने इन शब्दों में अपनी आस्था व्यक्त की है–

"रागानल के बीच पुरुष कंचन सा जलने वाला,
तिमिर-सिन्धु में डूब रश्मि की ओर निकलने वाला,
ऊपर उठने को कर्दभ से लड़ता हुआ कमल-सा,
ऊब-डूब करता, उतराता घन में विधु-मण्डल सा"

हमें जीवन के चिरन्तन सत्य को खोजने में धरती के सत्य को भूल नहीं जाना चाहिए। कवि मानता है कि केवल मन तथा आत्मा तक सीमित रहने वाले स्वर्ग का कोई महत्व नहीं। क्योंकि वह कुछ रच नहीं पाता। अपने हाथों से कुछ रच पाने में जो संतोष है वह ऐसे स्वर्ग से कहीं बेहतर है। सप्तम सर्ग में भीष्म के माध्यम से धरती के सत्य के प्रति अपनी पक्षधरता की घोषणा कवि इन शब्दों में करता है–

"ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
धर्मराज जो कुछ है, वह है मिट्टी में जीवन में।"

जब हमें अपनी अदम्य संघर्ष की चेतना को जागृत रखकर जीवन पथ पर आगे बढ़ेंगे तब मानव भविष्य की उज्जवलता के प्रति हमारा आशावादी दृष्टिकोण निश्चय ही आकार ग्रहण करेगा। दिनकर मानो भीष्म के माध्यम से सातवें सर्ग में हम सभी को संबोधित करते हुए मानव-भविष्य के प्रति अपना आस्था भाव व्यक्त करते हैं।

"आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्म राज
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से।
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से
स्नेह-बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में समाज, राष्ट्र और मानव-जाति के लिए जो संदेश प्रस्तुत किया गया है वह निश्चय ही उदात्त और भव्य है, इसमें कोई संदेह नहीं।

39.5.2 संदेश की प्रासंगिकता

आपने कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित संदेश का अनुशीलन करते हुए यह अनुभव किया होगा कि यहाँ भले ही कथा-प्रसंग को महाभारत से लिया गया हो किन्तु संदेश न केवल वर्तमान के लिए बल्कि अनागत भविष्य के लिए भी पूरी तरह प्रासंगिक है। कवि ने युद्ध की समस्या के माध्यम से अपने वर्तमान को उन अनेक समस्याओं और संदर्भों से जोड़ना चाहा है जो मनुष्य की नियति के साथ सीधे जुड़ी हुई हैं। कोई समस्या, संदर्भ या संदेश ऐसा नहीं है जो अपने युग से संबंधित न हो। इस संबंध में यह कहना अधिक उचित होगा कि अपनी सभी काव्य-कृतियों में दिनकर सर्वाधिक प्रासंगिक 'कुरुक्षेत्र' में ही सिद्ध हुए हैं।

39.5.3 मूल्यांकन

कुरुक्षेत्र में व्यक्त संदेश की प्रासंगिकता पर हमें कोई सन्देह नहीं किन्तु इस संदेश का मूल्यांकन एक अलग प्रश्न है। जब हम प्रासंगिकता पर बात करते हैं तो उसका आशय यह होता है कि आलोच्य विषय की हमारे अपने समय के लिए क्या उपादेयता है किन्तु जब आलोच्य विषय का मूल्यांकन किया जाता है तब हमें यह देखना होता है कि वह अपनी परिणति में प्रभावशाली हो पाया है अथवा नहीं? इसके लिए हमें आलोच्य विषय को तीन कसौटियों पर परखना चाहिए–

1. वह विषय काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत हो सका है या नहीं।
2. उसमें अपने कथ्य को संप्रेषित करने की क्षमता है या नहीं?

3 उसमें अपने पाठकों को प्रभावित करने की क्षमता किस अंश तक विद्यमान है?

कुरुक्षेत्र का सन्देश निश्चय ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति पा सका है। किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि यह काव्यात्मक अभिव्यक्ति शिल्प के प्रति किसी अतिरिक्त सजगता के कारण नहीं बल्कि भावों और विचारों की प्रवाहपूर्ण एकता के कारण संभव हो पायी है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र का सन्देश सम्प्रेषण में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करता। वह सहज ही अपने पाठकों के लिए ग्राह्य हो जाता है। जहाँ तक पाठकों को प्रभावित कर पाने की क्षमता की बात है, इस दृष्टि से भी कुरुक्षेत्र के सन्देश को पूरी तरह सफल माना जाएगा। भाषा की गतिशीलता, छान्दिक गति का अद्‌भुत प्रवाह, विचारों और भावों की प्राणवत्ता आदि गुणों ने निश्चय ही कुरुक्षेत्र के सन्देश को प्रभावशाली बना दिया है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र का सन्देश पूरी तरह अपने उद्‌देश्य की पूर्ति में सफल है।

बोध प्रश्न 4

क) हाँ या नहीं में उत्तर दें:

i) कुरुक्षेत्र का सन्देश मूलतः युद्ध की समस्या पर आधारित है।

ii) विज्ञान और बुद्धि के अतिवादी विकास से मानव-भविष्य उज्जवल बनता है।

iii) वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए मानव भविष्य को अंधकारमय ही माना जाएगा।

iv) कुरुक्षेत्र का सन्देश बहुत अंशों तक अपनी प्रासंगिकता खो चुका है।

v) कुरुक्षेत्र के संदेश को भीष्म के माध्यम से ही क्यों अभिव्यक्त किया गया है?

39.6 सारांश

आपने इस इकाई को सावधानीपूर्वक पढ़ा होगा। आपने देखा कि किस प्रकार अपनी परिस्थितियों एवं युग-सन्दर्भों से प्रेरित होकर दिनकर ने प्रभावशाली रूप से कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को प्रस्तुत किया। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- प्रतिपाद्य के स्वरूप को निर्धारित कर सकते हैं।
- उन परिस्थितियों को जान गए हैं जिन्होंने प्रतिपाद्य को आकार दिया।
- कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या युद्ध तथा अन्य विशिष्ट समस्याओं का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।
- कुरुक्षेत्र में व्यक्त सन्देश का स्वरूप क्या है? उसकी प्रासंगिकता क्या है? इन प्रश्नों का समाधान पा गए हैं।

39.7 शब्दावली

प्रतिपाद्य : कृति के कथ्य में जो समस्याएँ उठा कर उनका जो समाधान और सन्देश निरुपित किया है—वह समन्वित रूप

एकनिष्ठता : किसी एक के प्रतिं निष्ठा या आस्था का भाव

संक्रमण : प्रभावित होना

आत्मबल : आत्मा की शक्ति

प्रतिकार : सामना करना

प्रतिपक्ष : विरोधी पक्ष

त्याज्य : त्यागने योग्य

तत्व चिन्तन : किसी विषय के मूल स्वरूप पर विचार

मंथन : मथने की क्रिया

केन्द्रीय समस्या : सबसे प्रमुख समस्या

ऐतिहासिक विश्वसनीयता : इतिहास से संबंधित तथ्यों की प्रामाणिकता

प्रासंगिकता : सार्थकता या उपादेयता

39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न1

क) द्वितीय महायुद्ध की विनाशकारी घटनाओं ने दिनकर के मन को आन्दोलित किया। युद्ध की समस्या उनके चिन्तश का विषय बन गयी। उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध की इसी समस्या को अपना विषय बनाया। वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य का मूल आधार है।

ख) वे उग्रवादी एवं क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े अपने मित्रों की संगति से प्रेरणा पाते रहे हैं।

बोध प्रश्न 2

क) (ii) मनुष्य में स्वार्थ और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

ख) कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में कवि ने 'महाभारत' का आधार इसलिए ग्रहण किया है कि कवि की दृष्टि में ऐसा न करने से यह कृति प्रबन्ध न रह कर मुक्तकों का संग्रह बन जाती। इसके साथ ही यदि कोई कवि किसी विशिष्ट समस्या को प्रतिपादित करना चाहता है तो उसे अपने अतीत का आशय लेना ही होता है। 'महाभारत' क्योंकि स्वयं युद्ध की समस्या पर आधारित था अतः दिनकर ने महाभारत का आधार ग्रहण किया।

ग) कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित युद्ध की समस्या के प्रतिपादन में दो ही पात्र भाग लेते हैं–युधिष्ठिर एवं भीष्म इनमें भी भीष्म सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। क्योंकि युद्ध के संबंध में उनका चिन्तन मौलिक एवं यथार्थपरक है। इसके साथ ही भीष्म का चिन्तन दिनकर के चिन्तन के काफी निकट है। वे अपने चिन्तन में युद्ध की समस्या को प्रभावी रूप में उठाते हैं और समस्या के सभी पक्षों पर तेजस्वी रूप में अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं। भीष्म का व्यक्तित्व महाभारत में भी युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक गरिमामय है। यह धारणा भी पाठक के मन में भीष्म के प्रति विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है।

घ) कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या को उसके सभी पक्षों के साथ जीवन्त रूप में उठाया गया है। हम इससे पूरी तरह सहमत हैं।

बोध प्रश्न 3

क) i) उसने मनुष्य को सहानुभूति और संवेदना से शून्य कर दिया है।

ख) i) क्योंकि वही क्षमा के साथ दण्ड देने की भी क्षमता रखता है।
ii) क्योंकि उसमें विष न होने से क्षमा करना उसकी विवशता होगी।
iii) "गरल" दंश की शक्ति के अर्थ को व्यंजित करता है।

ग) i) हाँ, ii) नहीं, iii) नहीं, 1v) नहीं, v) नहीं।

बोध प्रश्न 4

क) क्योंकि भीष्म के माध्यम से ही इस कृति के सम्पूर्ण प्रतिपाद्य को आकार दिया गया है। इसके साथ ही कवि अपने दृष्टिकोण को भीष्म के माध्यम से ही अभिव्यक्त कर सकता है क्योंकि वह संदेश, पौरुष, शीर्ष, नीति और न्याय पर आधारित है।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

श्री रामधारी सिंह दिनकर, **कुरुक्षेत्र** राजपाल एंड संस, दिल्ली।

डॉ. नगेन्द्र, **आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ**, नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली।

डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह, **विनकर : एक पुनर्मूल्यांकन**, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. जयसिंह "नीरद", **विनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता**, अनुराधा प्रकाशन, मेरठ।

डॉ. सावित्री सिन्हा, **युग चरण विनकर**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

सं. डॉ. सावित्री सिन्हा, **विनकर**, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।

श्री कांतिमोहन शर्मा, **कुरुक्षेत्र मीमांसा**, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, पटना।

सं. धीरेन्द्र वर्मा, **हिन्दी साहित्य कोश, भाग I**, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी।

डॉ. नगेन्द्र, **भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

शम्भू नाथ सिंह, **हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास**, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

नंददुलारे वाजपेयी, **आधुनिक साहित्य**, प्रयाग साहित्य मन्दिर।

रामचन्द्र शुक्ल, **हिन्दी साहित्य का इतिहास**, काशी नागरी प्रचारिणी सभा; काशी।

NOTES